Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

बाणभट्ट के समय उत्तर भारत की सामाजिक स्थिति: एक अध्ययन

Parsoon*

M.A., M.Phil, Net, Department of History, MDU, Rohtak

शोध सार - ***बाणभट्ट का आविर्भाव उत्तर भारत के शक्तिशाली वर्धन वंश के समय हुआ। बाणभट्ट की रचनाओं के द्वारा हमें उस समय की सामाजिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। बाणभट्ट कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था,जाति प्रथा,अस्पृश्यता ,आश्रम व्यवस्था,पुरूषार्थ, संस्कार, विवाह आदि विभिन्न मान्यताएं प्रचलित थी। समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक गठन का आधार थी। बाणभट्ट की रचनाओं से पता चलता है कि पूर्व मध्यकालीन भारत में भी पूर्व की भांति ही प्रथाओं का प्रचलन था।***

मुख्य शब्द - ***वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा,अस्पृश्यता, आश्रम व्यवस्था,पुरुषार्थ,संस्कार, विवाह***

----------X----------

भूमिका

बाणभट्ट कालीन समाज में मानव वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए जीवनयापन करता था। जातियां विभिन्न उपजातियों में विभाजित हो चुकी थी। हिंदू धर्म में संस्कारों का समापन जीवन के विभिन्न पडावके लिए जरूरी था। सामाजिक जीवन में मानव को इन सभी प्रथाओं को मानना आवश्यक था। बाणभट्ट कालीन उत्तर भारत की सामाजिक स्थिति का वर्णन इस प्रकार से हैः-

वर्ण व्यवस्था

वर्ण शब्द का अर्थ होता है, वरण करना,चुनना। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अर्थोपार्जन के लिए 'वृत्ति' शब्द का का प्रयोग किया है। 'वृत्ति' का अभिप्राय वर्ण से है, अर्थात किसी विशेष व्यवसाय को चुनना। वृत्ति मानव जीवन के आर्थिक क्रियाकलापों से सम्बद्ध थी। परंपरागत जातिभेद से चार वर्ण थे। चारों वर्णों में विभिन्न मात्रा में धार्मिक अनुष्ठान जनित पवित्रता थी।1 ये चार वर्ण इस प्रकार से हैं-

1. ब्राह्मण

बाणभट्ट कालीन समय में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। ब्राह्मण बुद्धिजीवी वर्ण के अग्रणी होते थे तथा सबसे पवित्र माने जाते थे। वे गृहस्थ होकर भी ऋषि मुनियों की तरह आचरण करते थे। पूर्व कालीन समय की भांति इनका प्रमुख कार्य यज्ञ करना था। बाणभट्ट स्वयं वात्सायन वंश के श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जिनको पापों से छुटकारा दिलाने वाला माना जाता था।2 इस काल में ब्राह्मणों ने अन्य वर्णों के कार्य भी अपना लिए थे। ह्वेनसांग के समय में उज्जैन,जिहोती और महेश्वरपुर के राजा ब्राह्मण थे।3 पूर्व मध्यकालीन युग में सामाजिक परिवेश में हुए परिवर्तन ने परंपरागत वर्णों के कर्तव्यों को भी नए रूप में निर्धारित किया। प्रथम बार पराशर स्मृति (600-902 ई.) में कृषि को ब्राह्मण वर्ण की वृत्ति बताया गया। इससे पूर्व केवल आपत्ती ग्रस्त ब्राह्मण के लिए ही कृषि का विधान था। माधवाचार्य (1300-1380 ई.) ने बताया कि कलियुग में आपद्धर्म ही सामान्य धर्म बन जाता हैं। इससे पता चलता है कि इस समय अधिकांश ब्राह्मणों ने कृषि करना प्रारंभ कर दिया था।4

2. क्षत्रिय

ब्राह्मणों के बाद समाज में दूसरा स्थान क्षत्रियों का था। क्षत्रिय शासन व साम्राज्य की रक्षा में नियुक्त रहते थे। उनकी शिक्षण व्यवस्था में अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा प्रमुख होती थी। बाणभट्ट ने हर्षचरित में सूर्य व चंद्र दो प्रमुख क्षत्रियों का वर्णन किया है। उसने पुष्यभूति वंश की तुलना सूर्य से की है इससे पता चलता है कि पुष्यभूति सूर्यवंशी क्षत्रिय थे।5 ह्वेनसांग ने क्षत्रियों को सरल, पवित्र,मितव्ययी कहा। हिंदू

www.ignited.in

धर्म शास्त्रों में संकट काल में क्षत्रियों को अपने से निचले वर्ण का कर्म करने की व्यवस्था की थी। मनु की दृष्टि में दस वर्षीय ब्राह्मण सौ वर्षीय क्षत्रिय से श्रेष्ठ था। ब्राह्मण व क्षत्रिय क्रमशः पिता और पुत्र के समान थे। चारों वर्णों को संरक्षण प्रदान करना उनका कर्तव्य था, परंतु उन्हें ब्राह्मणों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे।6

3. वैश्य

समाज में तृतीय स्थान पर वैश्य आते थे। वह मुख्यतः पशुपालन, कृषि और व्यापार का व्यवसाय करते थे। धर्म शास्त्रों में इन्हें द्विजों में शामिल किया गया है। बाणभट्ट के अनुसार व्यापार वाणिज्य की स्थिति बेहतर ना होने से गांव में कृषि पर इनकी निर्भरता बढ़ने लगी। हर्षचरित में संस्था का अत्यंत विकसित रूप मिलता है, जिसका कारण बाणभट्ट ने वैश्यों का व्यापार में पतन के बाद जमीन को खरीदना बताया है। वैश्य उस जमीन पर सामंत के रूप में कार्य करने लगे।7आपत्ति काल में गौ, ब्राह्मण, वर्ण की रक्षा के लिए वैश्य को शस्त्र ग्रहण करने का अधिकार था। वैश्य वर्ग मंदिरों व मठों में दान के लिए प्रसिद्ध था। राज्य को कर प्रदान करने वाला वैश्य ही था।8

4. शूद्र

समाज में अंतिम स्थान शूद्रों का था। इस काल में शूद्रों ने कृषि को अपना प्रधान व्यवसाय बना लिया था। ह्वेनसांग शूद्रों के लिए कृषक शब्द का प्रयोग करता है। इनकी स्थिति अस्पृश्यों से बहुत अधिक अच्छी नहीं थी, परंतु कहीं कहीं उनके हाथ में राजनीतिक शक्ति भी थी। ह्वेनसांग ने उस समय कुछ शूद्र राजाओं का उल्लेख किया है।9 पूर्व मध्यकालीन समाज में व्यापार के ह्रास के कारण वैश्यों की स्थिति में गिरावट हुई। शूद्रों ने कृषक के रूप में वैश्यों का स्थान ग्रहण कर लिया। भूमि अनुदानों की अधिकता से सामतों व भू- स्वामियों को खेतों पर कार्य करने के लिए बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति शुद्र वर्ण ने की, जिससे शूद्रों को आय का अच्छा लाभ मिला व इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। इस समय शूद्रों की स्थिति बेहतर हुई क्योंकि वह नौकरी व कृषि दोनों कार्य करते थे।

जातिप्रथा

बाणभट्ट ने जाति प्रथा को हिंदू समाज का एक प्रमुख अंग बताया। इस समय परंपरागत चार वर्णों के अनेकानेक जातियों में बिखरने से जातियों व प्रजातियों की संख्या में वृद्धि हुई। ब्राह्मणों में भूमि अनुदानों की अधिकता से स्थानीयता कि भावना आयी, जिससे स्थान भेद के कारण उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाने लगा जैसे - सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल, गौड। क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र वर्ण भी इसी प्रकार से अनेक उप जातियों में विभाजित हो गए। इस काल में पेशे के आधार पर उपजातियां बनी10जैसे-

(1.) सुवर्णवणिक - स्वर्ण का काम करने वाले

(2.) औषधिक - औषधियों का काम करने वाले

(3.) लोहार - लोहा पिघलाने वाली जाति

(4.) बहेलिए - चिड़ियाओं को पकड़ने वाली शिकारी जाति

(5.) कुणनी - जंगल में लकड़ियां एकत्र करने वाला

इनके अलावा शिल्पी, बढ़ई, मोची, तेली, बुनकर, धोबी, दर्जी, मालाकार, जादूगर, नर्तक आदि अन्य शूद्र उपजातियां थी।

अस्पृश्यता

उस समय आबादी का बड़ा हिस्सा अछूतों का था। बाणभट्ट ने अछूतों को स्पर्श वर्जित कहा है। अछूतों को अंत्यज कहा जाता था। ये गांव और नगरों की सीमाओं के बाहर निवास करते थे। डोम, शबर चांडाल प्रमुख जातियां थी जिन्हें उनके आचरण के कारण अपवित्र माना जाता था। चांडाल की छाया मात्र पडने से ही व्यक्ति अपवित्र हो जाता था। ह्वेनसांग अस्पृश्यता का वर्णन करते हुए लिखता है कि कसाई व मेहतर नगर के बाहर ऐसे मकानों में निवास करते थे जो कि किसी विशेष चिन्ह से जाने जा सकते थे।11

आश्रम व्यवस्था

बाणभट्ट ने समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए व समाज की उन्नति के लिए आश्रम व्यवस्था को अति आवश्यक बताया है। यह व्यवस्था राजा प्रभाकरवर्धन के समय से हर्ष के समय तक पहले की भांति चलती रही व बाण ने भी राजा को इसे यथास्थिति में रखने की सलाह दी।12 पहला आश्रम ब्रह्मचर्य था जिसमें विद्यार्थी जीवन का निर्वहन करते हुए स्वयं को ग्रहस्थ होने के काबिल बनाता था। इसके बाद गृहस्थ आश्रम में सांसारिक उत्तरदायित्व को पूरा किया जाता था। इसके बादवानप्रस्थ आश्रम पूरा करने के लिए ईश्वर की आराधना करनी होती थी। यहां रहते हुए जीवन-

www.ignited.in

मरण पर विचार ,आत्म निरीक्षण करना होता था। एक वानप्रस्थी का जीवन अत्यंत त्याग, साधना और तप का था। एक वानप्रस्थी का ब्रह्मचर्य और इंद्रिय निग्रह के साथ-साथ सत्य और अहिंसा का अनुपालक होना भी आवश्यक था। अंत में सन्यास आश्रम आता था इसमें मनुष्य समाजोत्थान व आत्मोत्थान का लोभ त्याग कर मोक्ष प्राप्ति के प्रयास में लीन रहता था। जब मनुष्य सफलतापूर्वक वानप्रस्थ आश्रम को पार कर लेता था तो वह सन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। प्राचीन ग्रंथों में संन्यासी के लिए परिव्राजक,यति,भिक्षु शब्दों का प्रयोग मिलता है।13 इस समय स्त्रियां भी सन्यास आश्रम में प्रवेश करती थी। परिव्राजिका, मुण्डा, तापसी, भिक्षुकी, कषपणिका आदि संन्यासी स्त्रियां ही थी।

पुरुषार्थ

बाणभट्ट के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय समाज में पुरुषार्थ व्यवस्था भी विद्यमान थी। मनुष्य के भौतिक व आध्यात्मिक सुखों के बीच अनुकूलन रखने के लिए पुरुषार्थ का होना आवश्यक बताया गया। यह पुरुषार्थ चार प्रकार के बताए गए - धर्म,अर्थ, काम,मोक्ष। बाणभट्ट के अनुसार यह चारों आपस में एक दूसरे के बिना निष्प्राण हैं।14 धर्म,अर्थ, काम,मोक्ष को त्रिवर्ग कहा जाता था। धर्म को सब प्राणियों की रक्षा करने वाला माना जाता था, जिसका आधार नैतिक नियम, सदाचार होता था। हर्षचरित में राजा हर्षवर्धन ने धर्म का आश्रय इसलिए लिया था कि कोई अनुचित कार्य न हो। बाणभट्ट के अनुसार धर्म की रक्षा हेतु पुष्यभूति ने विविध प्रकार के रंगों वाला धनुष धारण किया था15 पुरुषार्थ में दूसरा नाम अर्थ का था। यदि अर्थ का अभाव हो तो व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। मनुष्य को अपने जीवन में कर्तव्य व उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। बाणभट्ट ने कामरूप के शासक द्वारा हर्ष के दरबारमें अपने दूत को बहुत सारे उपहार देकर भेजने का विवरण अपनी रचना में दिया है।16 तीसरा पुरुषार्थ काम माना गया है। व्यक्ति की सभी कामनाओं,आकांक्षाओं को काम के अंतर्गत माना गया। अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष था, जिसका अर्थ है- मरण -जीवन के चक्र से मुक्ति।

संस्कार

मनुष्य के व्यक्तित्व के उत्थान के लिए संस्कारों का निर्माण किया गया था। ऐसा माना जाता था की संस्कारों को संपन्न कराने से व्यक्ति का भौतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक जीवन समस्याओं से दूर हो जाता था। यह संस्कार संख्या में सोलह माने गए है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक इन्हें संपन्न कराना होता था।17यह सोलह संस्कार है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारंभ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह, अंत्येष्टि। संस्कारों को संपन्न कराते समय पुरोहित मंत्रोउच्चारण के साथ हवन व अग्नि के समक्ष देवताओं की स्तुति , प्रार्थना आदि विधिपूर्वक करता था। क्षत्रियों में उपनयन संस्कार, समापवर्तन संस्कार प्रचलित थे।18 इस प्रकार से जीवन पर्यन्त इन संस्कारों को संपन्न कराया जाता था।

विवाह

गृहस्थ आश्रम की शुरुआत विवाह से मानी जाती थी। पुष्यभूति वंश में प्राय सजातीय विवाह होते थे। प्रतिलोम विवाह को निषेध माना जाता था। राजा व सामंतों को छोड़कर समाज में एक विवाह का प्रचलन था। अंतरजातिय विवाह का विधान हम स्मृतियों में देखते हैं। मुख्य रूप से दो प्रकार के विवाह होते थे- अनुलोम , प्रतिलोम। अनुलोम विवाह में पुरुष उच्च जाति का तथा स्त्री निम्न जाति की होती थी। बाण का चंद्रसेन नामक सौतेला भाई शूद्रागर्भोत्पन्न था।19 पुरुषों का पुनर्विवाह होता था,स्त्रियां कभी अपना पुनर्विवाह नहीं करती थी। परंतु यह केवल उच्च वर्ग के लोगों पर लागू था। शूद्र व निम्न श्रेणियों के वैश्यों में स्त्रियों का पुनर्विवाह होता था। विवाह आठ प्रकार के होते थे- ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापत्य, पैशाच, राक्षस, गंधर्व, असुर। इन में से प्रथम चार को धर्मानुकूल समझा जाता था, अन्य चार को धर्म संगत नहीं समझा जाता था। विवाह में दहेज प्रथा प्रचलित थी। राज्यश्री के विवाह में भी अत्यधिक दहेज दिया गया था।20 परंतु यह दहेज स्वेच्छा से दिया जाता था। दहेज में रत्न, हाथी,घोड़े आदि का दान दिया जाता था।

बाणभट्ट ने उल्लेख किया है कि समान जाति में विवाह होते थे। जैसे कि प्रभाकरवर्धन जो कि चंद्रवंशी क्षत्रिय जाति के थे, उन्होंने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह अपने ही समान सूर्यवंशी क्षत्रिय कुल में ग्रहवर्मा के साथ किया। हावेल का यह मत है कि विवाह सामाजिक आदर्श नियमों की एक समग्रता थी जो विवाहित व्यक्तियों के आपसी संबंधों को उनके रक्त सम्बन्धियों और अन्य नातेदारों के प्रति परिभाषित करती थी और उन पर नियंत्रण रखती थी।21

निष्कर्ष

इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से चली आ रही हिंदू प्रथाएं बाणभट्ट के समय में भी समाज में प्रचलित

www.ignited.in

थी। सामाजिक समानता के सिद्धांत ने परंपरागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को चुनौती दी, जिससे की सामाजिक व्यवस्था अत्यंत जटिल हो गयी। समाज में व्याप्त हिंदू धर्म के आधार स्तंभ वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, पुरुषार्थ, विवाह, आदि का पहले की भांति निर्वहन किया जाता था।

संदर्भ

1. पाण्डेय, राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2006, पृ.310
2. हर्षचरित,पृ.12
3. झा, द्विजेंद्रनारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1981, पृ.305
4. श्रीवास्तव,के.सी, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2012 -13 पृ. 524
5. 'सोमसूर्य वंशाविट पुष्यभूति मुखरवंशो', बाणभट्ट, हर्षचरित, काणे,पी.वी (संपादित) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965, पृ. 96
6. झा एवं श्रीमाली पूर्वोक्त. पृ. 306
7. हर्षचरित,पृ.49
8. झा एवं श्रीमाली पूर्वोक्त. पृ. 307
9. गोयल, श्रीराम, हर्ष शिलादित्य, कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, 1986, पृ.227
10. श्रीवास्तव, के.सी,पूर्वोक्त.पृ.526
11. झा एवं श्रीमाली, पूर्वोक्त. पृ.313
12. पाण्डेय, अमरनाथ, बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1974, पृ.17
13. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1974,पृ.230
14. अग्रवाल,वासुदेवशरण, हर्षचरितःएक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना,1953, पृ.12
15. हर्षचरित,पृ.120 -168
16. शर्मा, बनवारीलाल, कादंबरी की अंतः कथाओं का ऐतिहासिक अध्ययन, शब्दश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1994,पृ. 206
17. पाण्डेय, अमरनाथ,पूर्वोक्त. पृ.116
18. कालरा, अर्चना, प्राचीन भारतीय संस्कृत चरित साहित्य में इतिहास, वाइकिंग बुक्स, जयपुर, 2017, पृ.138
19. गोयल, श्रीराम, मौखरी- पुष्यभूति-चालुक्य युग, कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ,1988, पृ. 308
20. पाण्डेय,राजबली, पूर्वोक्त. पृ.313
21. मिश्र,जयशंकर,पूर्वोक्त. पृ. 310

Corresponding Author

Parsoon*

M.A., M.Phil, Net, Department of History, MDU, Rohtak

ydvprasoon@gmail.com